संत गहिरा गुरु और उनका अवदान

प्रिया राय

एक राष्ट्र के रूप में भारत की विशेषता रही है प्राचीनता और निरंतरता। तमाम आपदाओं, आघातों के बावजूद हम सतत् विद्यमान ही नहीं रहे, अपितु अपने अस्तित्व की अर्थवत्ता को भी सिद्ध किया। सीमाएँ फैलती-सिकुड़ती रही हैं, सत्ता और सिंहासन स्थापित होते और उखड़ते रहे, किंतु भारत बना रहा है। तराना-ए-हिन्दी में इकबाल इसी बात की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं–'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' वह कुछ बात क्या है? हमारे राष्ट्र के सातत्य का कारण क्या है? जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि ऋषियों, संतों, भक्तों की अविरल परंपरा ही इस राष्ट्र की सांस्कृतिक संजीवनी है। पतन और पराभव की अवस्थाओं में इनकी वाणियों ने हमारे जीवन विवेक को उन्नत और जिजीविषा को प्राणवान बनाये रखा। स्वामी विवेकनंद ने 'धर्म' को इस राष्ट्र का आत्मतत्व कहा है। यह धर्म संतों, भक्तों द्वारा समय-समय पर व्याख्यायित होता रहा, जिससे जनता अनुप्राणित होती रही और यह राष्ट्र पुनर्नवता की ओर बढ़ता रहा। इस राष्ट्र की प्राण-शक्ति कभी उच्छिन्न, विलुप्त नहीं होने पायी। वैदिक ऋषियों से लेकर अधुनातन काल तक संतों भक्तों की एक बड़ी समृद्ध परंपरा रही है। हर काल, हर क्षेत्र, हर समाज-समुदाय में ऐसी विभूतियाँ जन्मीं, जिन्होंने अपने समय और समाज का मार्गदर्शन किया, जिनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रेरणापुंज बना, जिन्होंने समाज की जड़ता रूग्णता पर प्रहार कर मनुष्यता के मानदण्डों को उद्घाटित किया। इन संतों महात्माओं के कारण ही भारत भूगोल भर नहीं रहा, अपितु यह धरा धाम बन गयी। छत्तीसगढ़ के सरगुजा अंचल में भी ऐसे ही एक संत हुए गहिरा गुरु। किसी ने उन्हें अभिवन ऋषि कहा तो किसी ने वनवासी विवेकानंद। वनवासी बहुल सरगुजा अंचल में संत, समाज-सुधारक, संगठक के रूप में उनके द्वारा, जो भागीरथी उद्यम किया गया उसने इस अंचल में एक युगांतर उपस्थित किया। इस आत्मज्ञानी सिद्ध संत की स्नेह सिक्त वाणी ने इस अंचल के वनवासियों को साधना, संस्कार, स्वच्छता, स्वालंबन, स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया। गुरुजी तो ठहरे 'मसि कागद छुयो नहीं कलम गह्यों नहीं हाथ' वाली कोटि के। किंतु अनपढ़ होकर भी उन्होंने जो अलख जगायी वह किसी चमत्कार से कम नहीं। देशज प्रेरणा और पद्धति द्वारा वह परिवर्तन की पटकथा लिखते हैं।

गहिरा गुरु का जन्म श्रावण अमावस्या को 1905 में रायगढ़ जिले के लैलूंगा क्षेत्र के गहिरा ग्राम में एक कंवर परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम रामेश्वर कंवर था गहिरा ग्राम में जन्म लेने के कारण वह गहिरा गुरु नाम से विख्यात हुए। पिता का नाम बुड़की कंवर और माता का नाम सुमित्रा था। उनके पिता एक प्रतिष्ठित किसान एवं गाँव के मुखिया थे। बचपन से गहिरा गुरु का स्वभाव सामान्य बालकों से भिन्न था। उन्हें एकांतवास प्रिय था। जब तब वे गाँव से सटे जंगल में जाकर वह ध्यान लगाया करते थे। उनके बचपन की कई चमत्कारिक घटनाएँ मिलती है, जो उन्हें विशेष बालक बनाती हैं।

एक दिन वह घर से बिना किसी को बताये गायब हो गये। वह अपने मित्र बोचकू लांजा एवं आसाराम को लेकर जंगल में सेंधडेरा चले गये थे। वहाँ उन्होंने 15 दिनों तक साधना की। कहा जाता है कि साधना उपरांत उन्हें ऋषियों के साथ माता अरूंधती ने दर्शन दिया। एक अलौकिक प्रभा से वह दीप्त हो उठे। सिद्धों जैसी उनकी आभा को देखकर बोचकू विह्वल-विस्मित हो गया, वह भागकर गाँव आया और लोगों को बताने लगा कि रामेश्वर भगवान है, उनकी (रामेश्वर) भेंट जंगल में निरंजन दास से होती है। एक गुफा में वह साधना कर रहे थे। दो दिन तक रामेश्वर निरंजन दास के साथ रहे और आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्राप्त किया। लोग निरजंन दास को ही रामेश्वर का गुरु मानते हैं। जिस गुफा में रामेश्वर की निरंजन दास से भेंट हुई थी उसे निरंजन गुफा कहते हैं।

श्रावण मास अमावस्या सन् 1943 ई. की मध्य रात्रि में गहिरा में गुरुजी ने सनातन धर्म संत समाज की स्थापना की। उनकी प्रेरणा से गाँव में एक छोटा-सा शिव मंदिर बनाया गया। उन्होंने लीला कीर्तन भी शुरू कराया। 1946 में गहिरा गुरु गांधी जी से मिलने दिल्ली गये। कहते हैं जब गांधी जी नोआखली में सांप्रदायिकता की आग को बुझा रहे थे, तब गहिरा गुरु भी उनके साथ थे।

बाद में गाँधी जी से अपने अंचल में काम करो का आदेश पाकर, उनकी अनुमति से वह वापस सरगुजा आ गये। 1946 में गुरु जी गहिरा से निकलकर सामरबार आते हैं। जशपुर भ्रमण करते हैं। 1951 में वह कुसमी के निकट स्थित श्रीकोट जाते हैं। वहाँ भूतांगर नामक स्थान पर जिसके संबंध में जनमानस में बहुत भय व्याप्त था, वह वहाँ वास करते हुए साधना एवं सामाजिक उत्थान का कार्य करते हैं। 1953 में वह सामरबार के निकट राट गुफा आते हैं। वहाँ वह 7 दिन तक साधना करते हैं। कहते हैं कि वहाँ उन्हें भगवान शंकर का साक्षात्कार हुआ। वह एक सिंह की गुफा थी। बाद में उस गुफा को जन सहयोग से गुरुजी विस्तृत करते हैं, वहाँ वह शिवलिंग स्थापित करते हैं। 1965 में वह कैलाश गुफा में एक बड़ा यज्ञ संपन्न कराते हैं। उनकी प्रेरणा से कैलाश गुफा में प्राथमिक विद्यालय, सामरबार में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं महाविद्यालय प्रारंभ किया जाता है। 1986-87 में उन्हें इंदिरा गांधी राष्ट्रीय समाज सेवा पुरस्कार देने की घोषणा की जाती है। उन्हें मध्यप्रदेश बिरसा मुण्डा आदिवासी सेवा राज्य पुरस्कार भी दिया जाता है। अपने अंतिम दिनों में वह बहुत अस्वस्थ हो गये थे। 21 नवम्बर, 1996 में देवोत्थान एकादशी के दिन बह परमधाम प्रस्थान कर गये। श्रावण अमावस्या को आगमन और देवोत्थान एकादशी के दिन प्रस्थान। यह पावन संयोग इस बात का प्रमाण है कि गुरुजी अत्यंत पुण्यात्मा एवं सिद्ध पुरुष थे।

'दंभ मान मद करहि न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ'। या 'निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं। सम सीतल नहि त्यागहि नीती। सरल सुभाउ सबहि सन-सन प्रीति।।' गोस्वामी तुलसीदास द्वारा बताये गए संतों के ये लक्षण गहिरा गुरु में अपने पूर्णतम एवं शुभ्रतम रूप में विद्यमान थे। उनका जीवन चमत्कारों से भरा हुआ है, किंतु उन्होंने चमत्कार से नहीं अपितु सद्व्यवहार से अपने शिष्य बनाये। गृहस्थ होते हुए भी उन्होंने अत्यंत उच्चकोटि का साधनामय-आध्यात्मिक जीवन जिया। वह निर्जन वन, दुर्गम स्थान में धूनी रमाकर ध्यान में डूबे रहने वाले संत नहीं, अपितु उन्होंने जनता के बीच जाकर अहर्निश काम किया। स्वामी विवेकानंद की तरह उनके भी समस्त कर्मों का एक ही उद्देश्य था-

मनुष्य निर्माण। वह सिर्फ धर्मोपदेश नहीं देते थे। अपितु अपने शिष्यों, जन सामान्य को जीवनोपयोगी व्यवहारिक बातें, कौशल भी सिखाते थे। उन्होंने वनवासियों को खेती करना, हल बनाना, रस्सी बुनना, दूध का उपयोग करना, बढ़ई गिरी, स्नान करना, शौच के पश्चात् पानी प्रयोग करना सिखलाया। वह सच्चे अर्थों में गुरु थे। कबीर ने जिस सद्‌गुरु की बात की है। गहिरा गुरु उसी तरह के सद्‌गुरु थे। धर्म-अध्यात्म के नाम पर आजकल के तथाकथित धर्मगुरुओं की तरह उन्होंने अपना कारोबार, सुख-सुविधा-ऐश्वर्य से परिपूर्ण साम्राज्य नहीं खड़ा किया। घर-गृहस्थी होते हुए भी उन्होंने संचय नहीं, लोक कल्याण के लिए दान-त्याग किया। गहिरा में अपनी 70 एकड़ पैतृक जमीन बेचकर वह श्रीकोट में जमीन खरीदते हैं और स्थानीय वन वासियों को खेती के लिए वितरित करते हैं। इसी तरह ग्राम सामरबार (बूची डाड़) में वह शासन के द्‌वारा कोरबा एवं अन्य जनजातियों के लोगों को 700 एकड़ जमीन वितरित करवाते हैं। आडंबर, प्रदर्शन, विज्ञापन, प्रलोभन, पद-प्रतिष्ठा की लालसा से वह कोसो दूर थे। समाज से उन्हें जो स्वीकार्यता, सम्मान, सहयोग, विश्वास मिला उसका उन्होंने कभी दुरूपयोग नहीं किया। वह पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन उनकी बातों, प्रवचनों में शास्त्रों का सार हुआ करता था। वह उड़िया शास्त्रों से उद्‌धरण दिया करते थे। संस्कृत, हिंदी सीखने की उनके अंदर ललक थी। उनकी बोली-बानी में उड़िया का प्रभाव था, बातचीत वह प्रायः सरगुजिहा में किया करते थे। शिक्षित लोगों से वह टूटी-फूटी खड़ी बोली में बात करते थे। उनका व्यवहार अत्यंत आत्मीय था। अपनी सरलता, विनम्रता से वह लोगों को सहज ही अपना बना लेते थे। उनके व्यक्तित्व में एक चुंबकीय आकर्षण था। बच्चों से उन्हें अपार स्नेह था, खेल-खेल में वह बच्चों को संस्कार सिखलाया करते थे। समग्र रूप से जब हम गहिरा गुरु के जीवन को देखते हैं तो पाते हैं कि उनके जीवन में ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्‌भुत समाहार था। तत्वज्ञानी तो वह थे ही, सिद्‌ध साधक और भावप्रवण भक्त भी थे, उन्होंने एक योद्‌धा की तरह सामाजिक उत्थान के लिए कर्म किया। उन्होंने 'जस की तस धर दीनी चदरिया' की तरह जीवन जिया।

1943 में श्रावण अमावस्या के दिन उन्होंने सनातन धर्म संत समाज की स्थापना की। इस संस्था के द्‌वारा सरगुजा अंचल में जनजातीय कल्याण का अपूर्व कार्य किया गया। सनातन धर्म संत समाज के प्रमुख नियम इस प्रकार हैं–

1. प्रातः स्नान करके तुलसी में जल चढ़ावें।
2. प्रत्येक घर में पूजा स्थल हो।
3. रसोई घर रोज लीपना।
4. भोजन में से अग्नि का एंव गौ-ग्रास निकालना।
5. समाज एवं परिवार के सभी सदस्यों को सम्मान जनक शब्द से संबोधित करना।
6. सुबह-शाम परिवार के बड़े सदस्यों को 'शरण' (प्रणाम करना)।
7. प्रतिदिन एक मुट्‌ठी चावल एवं 25 पैसे समाज के लिए निकालना।

8. प्रत्येक गुरुवार को एक परिवार में सामूहिक रामचरितमानस का पाठ करना।

9. वर्ष में एक बार तीन दिनों के लिए निःशुल्क श्रमदान करना।

10. मांसाहार एवं नशीले पदार्थों का पूर्णतः त्याग करना।

11. श्वेत वस्त्र धारण करना।

12. सोलह संस्कार करना एवं वैदिक विधि से विवाह करना।

13. शुभ्र झण्डा लगाना। प्रतिवर्ष उसे बदलना तथा 1.25 रुपये एवं 2 किलो चावल चढ़ाना।

इस संस्था का मुख्यालय सामरबार में है। सामरबार, गहिरा, श्रीकोट, अम्बिकापुर, विश्रामपुर, सोनगरा (प्रतापुर), अंधला (लखनपुर) कछार (भूपदेवपुर), बनोरा (रायगढ़), चंद्रमेढ़ा में संस्था के आश्रम हैं। संस्था द्वारा श्रीकोट, सामरबार, कैलाश गुफा, गहिरा, लैलूंगा में विद्यालय, छात्रावास का संचालन किया जा रहा है। गहिरा गुरु ने वनवासी समाज में संस्कृत के प्रसार के लिए, जो कार्य किया वह अविस्मरणीय है। संस्था के विस्तार एवं विकास के लिए गहिरा गुरु द्वारा चलायी गयी। मुट्ठीदान, श्रमदान की पद्धति जितनी अनोखी है उतनी ही कारगर भी सिद्ध हुई। इसने लोगों के अंदर साझेदारी और सामुदायिकता का भाव भरा। गहिरा गुरु का संदेश था–'चोरी-दारी, हत्या, मिथ्या त्यागें। सत्य अहिंसा, दया क्षमा धारें।।' उन्होंने जनजातीय समाज को सिर्फ सदाचरण के लिए ही नहीं प्रेरित किया, अपितु उन्हें खेती करना, गौ-पालन, वानिकी के लिए भी प्रशिक्षित, प्रोत्साहित किया। वह संस्कार के साथ जनजातीय समाज को संगठित और स्वावलंबी भी बनाते हैं। 300 गावों में वह अन्न भंडारण की व्यवस्था (धान कोठी) करते हैं, जिससे वनवासी बंधु साहूकारों के चंगुल से मुक्त रहें। ग्रामोदय और लोक कल्याण के उनके कार्य गांधी जी का स्मरण कराते हैं। गांधी का उन पर गहरा प्रभाव भी था। उन्हें गांधी का क्षेत्रीय, सरगुजिया संस्करण कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

गहिरा गुरु एक ऐसे समय में सरगुजा अंचल में अपना कार्य कर रहे थे, जब ईसाई मिशनरियों के द्वारा जनजातीय समाज के धर्मांतरण का जोर-शोर के साथ कार्य किया जा रहा था। गहिरा गुरु यदि नहीं होते तो इस अंचल में जनजातियों का धर्मांतरण हो चुका होता। गहिरा गुरु सनातनी आस्था की वह सुदृढ़ चट्टान हैं, जिन्होंने धर्मांतरण की बाढ़ को रोका। वह वनवासी समाज के सिर्फ उद्धारक ही नहीं थे अपितु धर्म रक्षक भी थे। वह सामाजिक समरसता के एक बहुत बड़े सेतु थे। वह स्वयं कंवर जाति के थे, उन्होंने कंवर, उरांव, गोंड, नगेशिया, पण्डों, कोरबा, अहीर को एक सूत्र में बाँधा। उनके शिष्यों में बड़ी संख्या में व्यापारी एवं ब्राण वर्ण के भी थे। वनवासी समाज और तथाकथित सर्वण नागर समाज को उन्होंने एक-दूसरे के नजदीक लाये। इस तरह गहिरा गुरु सनातनी सामाजिक समरसता के एक समर्थ शिल्पकार थे, उन्होंने कंवर, उरांव जनजाति को उनके गौरवशाली अतीत से परिचित कराया, उन्होंने बतलाया कि वे कौरवों और पाण्डवों के वंशज हैं। वे नीच नहीं, अपितु उच्च कुल के क्षत्रिय हैं। कालांतर में परिस्थितियों वश उन्हें जंगलों, दुर्गम स्थानों में बसना पड़ा। गहिरा गुरु की प्रेरणा से चद्रवंश दर्पण, सूर्यवंशावलोक, उरमाल वंशावली

जैसे ग्रंथ लिखे गये, जिसमें जनजातीय समाज के कुल, गोत्र, संस्कार, परंपरा का वर्णन किया गया है। इस तरह गहिरा गुरु वनवासी समाज के जातीय स्वाभिमान को सहेजने, संजोने और स्मरण कराने वाले सुचारक थे। आज के समय में जब वनवासी समाज में 'हम हिन्दू नहीं हैं' का दुष्प्रचार, भ्रम फैलाकर उन्हें हिन्दू समाज से पृथक कर समाज में वैमनस्य एवं विष घोलने का कुछ देश विरोधी संगठनों, संस्थाओं द्वारा षड्यंत्र किया जा रहा है, तब ऐसे समय में गहिरा गुरु की प्रासंगिकता बहुत बढ़ जाती है।

विभूतियाँ इसलिए भी श्रद्धेय स्मरणीय होती हैं, क्योंकि वे नयी परंपराओं का प्रर्वतन करती हैं, नये प्रतीकों को गढ़ती हैं, नयी पद्धतियों का श्री गणेश करती हैं। उनकी उपस्थिति सामूहिकता एवं नवीन सांस्कृतिक उल्लास का सूत्रपात करती हैं। उनकी जन्मभूमि और कर्मभूमि नये तीर्थ क्षेत्र के रूप जनसामान्य में समादृत होती हैं। इस दृष्टि से यदि हम गहिरा गुरु को देखते हैं, तो वह एक महान विभूति के रूप में नजर आते हैं, उन्होंने 'शरण' कहकर अभिवादन करने की प्रणाली प्रचालित की। 'शरण' अर्थात् मनुष्य में निहित ईश्वरीय तत्व के प्रति सम्मान का भाव। मांस-मदिरा में डूबे रहने वाले वनवासी समाज को उन्होंने लीला कीर्तन दिया, जिस तरह गोस्वामी तुलसीदास, मेधा भगत रामलीला के माध्यम से लोक शिक्षण का कार्य करते हैं, उसी तरह गहिरा गुरु लीला कीर्तन के माध्यम से वनवासी समाज को संस्कारित करते हैं। गहिरा गुरु ने रामचरित मानस को वनवासी समाज में पहुँचाया। लीला कीर्तन के अंतर्गत रामचरित मानस की चौपाई को ढोल, मंजीरा बजाते हुए गाते हैं। सरगुजा, रायगढ़ के गावों में रात्रि में आज भी लीला कीर्तन होता है। लीला-कीर्तन से ग्रामीणों को जहाँ धार्मिक आध्यात्मिक आहलाद मिलता है, वहीं उन्हें नाच – गाकर आनंदित होने का अवसर भी मिलता है। गहिरा गुरु ने कैलाश नाथेश्वर धाम नामक एक नये तीर्थ की स्थापना की। यहाँ प्रवाहित अलकनंदा नदी गंगा के समान पूज्य और मोक्षदायिनी मानी जाती है। वनवासी बंधु यहाँ मुण्डन, कर्णछेदन, यज्ञोपवीत, अंतिम क्रिया, अस्थि विसर्जन करते हैं। गहिरा गुरु के अनुयायियों में श्रीकोट, गहिरा, सामरबार को तीर्थ की तरह पवित्र, पूज्य माना जाता है। गहिरा गुरु की प्रेरणा से प्रति वर्ष श्रावण मास और महाशिवरात्रि के अवसर पर कैलाश गुफा में रूद्र महायज्ञ गहिरा में विष्णु महायज्ञ और सामरवार श्रीकोट, अम्बिकापुर में शत चण्डी यज्ञ होता है। इस तरह गहिरा गुरु वनवासी समाज के सांस्कृतिक जीवन में धार्मिकता, आनंद के नये अवसरों, स्थलों को सृजित करते हैं।

गहिरा गुरु के कार्यों को समाज में व्यापक स्वीकृति एवं सराहना मिली। गहिरा गुरु के सम्मान में सरगुजा विश्वविद्यालय का नामकरण उनके नाम पर किया गया 'संत गहिरा गुरु विश्वविद्यालय'। कंवर समाज के एक व्यक्ति की रामेश्वर से गहिरा गुरु तक की गाथा किसी पवित्र आख्यान से कम नहीं है। सचमुच वह सरगुजा के प्रज्ञा पुरुष थे, प्रेरणा पुंज थे। वह तुलसी की परंपरा के संत थे। लोक, वेद को समान मान देने वाले, समन्वय-समरसता के रसायनी, सनातनी विश्वासों के विस्तारक, लोक मंगल हेतु राम चरित के प्रसारक। देश के धार्मिक सांस्कृतिक मानचित्र पर उन्होंने सरगुजा अंचल को एक विशेष पहचान दिलायी। वह एक महान लोक शिक्षक एवं समाज सेवक थे।

प्रिया राय, अतिथि प्रवक्ता,

हिन्दी विभाग, संत गहिरा गुरु वि.वि.

अम्बिकापुर (छ.ग.)